3

मेरे जन्मदाता पिताजी द्वारा उत्पन्न पारिवारिक अर्थ-संकट

मैं पहले कह चुका हूँ कि मेरे जन्मदाता पिता संपन्न परिवार के सब से छोटे सदस्य होने के नाते प्रारंभ से ही उत्तरदायित्वों से मुक्त रहकर जीवन बिताते रहते थे। परंतु व्यापारिक कुल में जन्म लेने के कारण और व्यावसायिक प्रवृत्ति के कारण वे कभी शांत होकर नहीं बैठे। उनमें सौदा-सट्टा करने की भी प्रवृत्ति थी जिसे एक प्रकार से जूए का ही रूप समझना चाहिए और जिसकी हमारे परिवार में प्रारंभ से ही मनाही थी। अपने विविध कार्यकलापों में उन्हें शायद ही कभी सफलता मिली हो परंतु सम्मिलित परिवार में रहने से उसका आघात उन्हें नहीं झेलना पड़ता था। परंतु एक बार तो अति हो गयी। उनके फाटके के कार्य से हमारे पूरे परिवार की स्थिति ही डगमगा गयी। वह घटना मेरे जन्म के 3-4 वर्ष पूर्व की है। मेरे पिताजी ने कलकत्ता जाकर फाटके में अपना भाग्य आज़माने का निर्णय लिया। चूँकि यह कार्य परिवार में वर्जित था इसलिए दोनों सगे बड़े भाई, रायसाहब और गयाप्रसादजी तथा चचेरे भाई देवीलालजी ने इसका विरोध किया। उनके नहीं मानने पर उनसे स्टैंप पेपर पर यह लिखा लिया कि उनके उक्त उद्योग में परिवार के फर्म का, जिसका नाम सदासुख भैरोंलाल था, या व्यक्तिगत रूप से अन्य भाइयों का भी, कोई सरोकार नहीं होगा। उक्त फाटके के कार्य में मेरे जन्मदाता पिताजी को प्रायः साढ़े तीन लाख रुपयों का घाटा लगा जो उन्हें बाजार को चुकाना था। हमारे परिवार की साख पर ही इतना लंबा-चौड़ा बाजारवालों का देना हो सका था। यह राशि आज के हिसाब से तो करोड़ों में आँकी जायगी पर उस समय भी बहुत बड़ी राशि समझी जाती थी। उन दिनों पैसेवाले को लोग लखपति ही कहते थे। जब इस बड़े घाटे का समाचार गया पहुँचा तो सन्नाटा छा गया। तीनों भाइयों ने विचार करना शुरू किया कि क्या किया जाय। एक भाई ने कहा कि हम लोगों के पास तो स्टैंप पेपर पर लिखा हुआ है कि हमारे संयुक्त परिवार का इससे कोई सरोकार नहीं है। इस पर रायसाहब ने कहा कि इस बात से यही

कहा जायगा कि नफा होता तो सब लोग रख लेते, अब घाटा हो रहा है तो नहीं चुकाने की नीयत से हमें स्टैप-पेपर दिखाकर निकल भागना चाहते हैं। रायसाहब ने कहा कि यह रकम तो हमें चुकानी ही होगी क्योंकि मेरे जीतेजी कोई हमारे परिवार पर उँगली नहीं उठा सकता। दिवालियापन की घोषणा करने की राय पर उन्होंने फिर कहा कि मेरे जीतेजी यह भी संभव नहीं है। उन्होंने यह जरूर कहा कि शीतलप्रसाद, जिसने यह घाटा किया है, उसको संयुक्त परिवार की संपत्ति से वंचित करके यह रकम हम चुका दें। इस पर देवीलालजी ने, जो चचेरे भाई थे, अपने हृदय की विशालता का परिचय देते हुए कहा, 'नहीं, छोटे भाई ने भयंकर भूल की है परंतु उसका परिणाम हम सभी को भुगतना है।' इसके बाद रायसाहब ने साढ़े तीन लाख रुपयों के लिए चारों तरफ से रकम बटोरनी शुरु की। पहला जरमन महायुद्ध समाप्त हो चुका था और उसमें हमें गया जिले में नमक बेचने की मोनोपोली अर्थात् एकछत्र अधिकार मिला हुआ था। उसके खाते में बचत के प्रायः एक-डेढ़ लाख रुपये थे। बनारस में हमारी बनारसी साड़ी की आढ़त की गद्दी बंद कर दी गयी और वहाँ से 25-30 हजार रुपये आ गये। हजारीबाग नगर के एक सेठ श्री रामनारायण लाल, जो रायबहादुर हो चुके थे और काफी रुपये कमा चुके थे, हम लोगों के फर्म सदासुख-भैरोंलाल के नाम से अर्थात् हमारे फर्म की गुडविल से ही ऐसा कर सके थे। उसके एवज में व्यापार प्रारंभ करते समय उन्होंने मुनाफे में रुपये में चार आना हमें देना स्वीकार किया था। उनसे हिसाब माँगते ही उन्होंने 80 हजार रुपये भिजवा दिये। इस प्रकार साढ़े तीन लाख रुपयों का प्रबंध करके रायसाहब कलकत्ता, फूलकटरे में स्थित हमारी गद्दी में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा कि जरा मैं नालायक शीतल प्रसाद का मुँह देखना चाहता हूँ जिसने हमें इस संकट में डाल दिया है। पिताजी कहीं दिखाई नहीं दिये। मुनीम ने कहा, 'बाबू, थोड़ी देर पहले तक तो यहीं थे, पता नहीं, कहाँ गये, आपके सामने आने से डर रहे होंगे।' इतने में गद्दी में जो कोठरी थी उसके किवाड़ उढ़के हुए होने के कारण, मुनीम ने उन्हें खोल दिया। खोलते ही देखते हैं कि पिताजी एक कोने में दुबके बैठे हैं। उनकी मुट्ठी में अफीम की डली थी जिसे वे आत्महत्या करने को खाना चाहते थे पर खाने का साइस नहीं जुटा सके थे। रायसाहब ने बिगड़कर कहा, 'नालायक, हम लोगों को दिवालिया होने के कगार पर पहुँचा दिया और अब आत्महत्या करके निकल भागना चाहता है'। खैर, साढ़े तीन लाख रुपयों का भुगतान करके और कलकत्ते की गद्दी बंद करके रायसाहब पिताजी को साथ लेकर गया आ गये। इस प्रकार यह भयानक संकट समाप्त हुआ जो

एक ओर तो मेरे पिताजी की बहुत बड़ी भूल का और दूसरी ओर रायसाहब की बुद्धिमत्ता, विशालहृदयता और बंधुप्रेम का भी द्योतक था। संयुक्त परिवार में ही ऐसा होना संभव था। यहाँ मैंने जिस पारिवारिक संकट से त्राण पाने की बात कही है और उसमें अपने जन्मदाता पिताजी द्वारा किये गये साढ़े तीन लाख रुपयों के घाटे को पूरा करने की घटना का वर्णन किया है उसकी गंभीरता और साढ़े तीन लाख रुपयों की वह राशि आज के रुपयों में कितनी बड़ी राशि होगी, यह बात सोने की भाव-वृद्धि के निम्न अनुपात से समझी जा सकती है। सोने का भाव जो उन दिनों 14-15 रुपये तोले से अधिक नहीं था, जो आज 11-12 हजार रुपये तोला से ऊपर हो गया है।

अपने परिवार के संबंध में एक अन्य घटना 1937-38 की, जब मैं 10वीं या 11वीं कक्षा का विद्यार्थी था, और जिसका मैं प्रत्यक्षदर्शी था, याद आ रही है। घाटा तो उसमें भी ऐसा ही लगा था, पर वह कागजी था और हमारे परिवार पर सिवा क्षणिक अवसाद के उसका दूसरा कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। उसका उल्लेख करना मनोरंजक ही नहीं है, भाग्य की विडंबना को भी दरसायेगा कि किस प्रकार भाग्य से जो हमें मिलना है उसके लिए वैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और जो नहीं मिलना है, वह हाथ में आते-आते भी मिलने से रह जाता है। वह घटना यों है—1937-38 में बिहार प्रदेश के सिंगर नामक रजवाड़े पर हमारी साढ़े तीन लाख रुपयों की डिग्री हो गयी। 1937-38 के साढ़े तीन लाख रुपयों की कीमत भी आज के हिसाब से उपर्युक्त सोने के अनुपात से यों समझी जा सकती है कि उन दिनों सोने का भाव करीब 20 रुपये तोला का था। साढ़े तीन लाख रुपयों में पूरे सिंगर राज को नीलामी पर चढ़ाकर हम राजा बनने का स्वप्न देखने लगे थे। मैं, बालक भी, इस समाचार को सुनकर खुशी से भर गया था। परंतु उन्हीं दिनों प्रदेश में कांग्रेस की हुकूमत आ गयी और यह बिल पास हो गया कि मूल रुपयों से अधिक ब्याज की राशि की डिग्री नहीं होगी। फलतः इजराय में नीलामी के पूर्व, हमारी साढ़े तीन लाख रुपयों की राशि घटा कर बत्तीस हजार कर दी गयी क्योंकि हमारा दिया हुआ मूल धन मात्र सोलह हजार था। शेष ब्याज ही ब्याज था। यह राशि राज की ओर से चुका दी गयी और प्याला हमारे होठों तक आकर पीने के पूर्व ही गिरकर चूर-चूर हो गया।